A Pratibha Spandan Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 02, July-December, 2025

राजस्थान के लुप्तप्राय तन्तु वाद्यों का सांस्कृतिक एवं संगीतात्मक योगदान

Akshay Kumar Rathi[1], Dr. Gaurav Shukl[2]

1 Research Scholar, Department of Music. Jainarayan Vyas University, Jodhpur
2 Research Director, Assistant Professor, Department of Music. Jainarayan Vyas University, Jodhpur

OPEN ACCESS

शोध सार

राजस्थान के कई लोक तत् वाद्य आज लुप्त होने के कगार पर है क्योंकि उन्हें बजाने वाले लोग बहुत कम बचे हैं। गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है कि "कामायचा "तथा "सुरिंदा "के अतिरिक्त और भी ऐसे वाद्य है जो आज लुप्त होने के कगार पर है। राजस्थान के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग रीति-रिवाजों पर अनेक तत् वाद्यों के वादन की झलक दिखाई व सुनाई पड़ती है। जो कि राजस्थान के लोक-संगीत को और पहचान दिलाने में सक्षम है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक के कुछ ग्रंथों का अध्ययन करते हुए इस लेख के माध्यम से लुप्त हो रहे वाद्यों के बारे में जानकारी देने का एक विनम्र प्रयास किया गया है।

मुख्य बिन्दु *:- लोक , तत् , संगीत , प्राचीन*

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति पुण्य-धारयित्री, सुजलाम, सुफलाम एवं शस्यश्यामलाम आदि विशेषताओं के कारण सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। यह विश्व की तमाम संस्कृतियों में अग्रगव्य है। भारत का सांस्कृतिक इतिहास इस बात का प्रबल साक्षी है कि वैदिक काल से आज तक भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक भावना में कोई परिवर्तन नहीं आया है। बार-बार ह्रास होने पर भी वह पुनः अपनी जीवंत परम्पराओं के नवोन्मेष के साथ पूर्व शाश्वत मूल्यों सहित पुनः पुनः उद्भूत और विकसित हूई।

पारस्परिक, प्रेम सौहार्द भक्ति-भाव तथा आध्यात्म का मार्ग अपनाते हुए भारतीय संस्कृति निरन्तर सुदृढ होती रही है। इन मूल्यों की स्थापना में संगीत का सर्वाधिक महत्व और योगदान रहा है। अतः यह निश्चित है कि एक प्रभावशाली तत्व है। भारतीय आचार्यो ने संगीत को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरूषार्थो की प्राप्ति सर्वोतम उपाय माना है। भारतीय संगीत दो भागों में विभाजित है। 1. शास्त्रीय संगीत 2. जन संगीत या लोक संगीत । यद्यपि दोनों संगीत एक दूसरे के पूरक होते हुए भी इन दोनों में थोड़ा सा अन्तर है। शास्त्रीय संगीत लोक संगीत का विकसित रूप माना जाता है।

भारतवर्ष के लोकगीतों में लोकवाद्यों का प्रयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्राचीन काल के धार्मिक अवशेषों, शास्त्रीय ग्रंथों, वेदकालीन वाद्य निरूपण तथा मोहनजोदड़ो की खुदाई में इस तथ्य के प्रमाण है कि लोकवाद्यों का प्रभावित क्षेत्र देवी-देवताओं से अधिक रहा। प्रारंभ से ही लोकगीतों में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का प्रयोग होता रहा है। प्राचीनकाल से ही वाद्यों का वर्गीकरण 4 भागों में विभाजित किया हुआ है। जो इस प्रकार है-

1. तत् वाद्य

2. सुषिर वाद्य

3. अवनद्ध वाद्य

4.घन वाद्य

वाद्यों के विभाजन के क्रम में राजस्थान के लोकसंगीत में तत् वाद्यों का योगदान भारतीय संगीत का सुसज्जित करता आ रहा है। तत् वाद्य से तात्पर्य उन वाद्यों से है जिनमें स्वरों की उत्पत्ति तार के द्वारा होती है। इनमें से जिन्हें गज माध्यम से बजाया जाता है उसे वितत वाद्य कहते हैं। राजस्थान की धरती संगीत और लोक परम्पराओं से भरपूर है जहाँ हर क्षेत्र का अपना अनोखा वाद्ययंत्र और सुर होता है। जिसमें से रावणहत्था, एकतारा, जंतर, सारंगियों के प्रकार, कामायचा, रबाब, अपंग, भपंग, गरासियों तथा मेवों का चिकारा, रवाज आदि और भी ऐसे लोक तत् वाद्य है जो लुप्त होने के कगार पर है। राजस्थान के ये लोक वाद्य अपने सुर, स्वर सौंदर्य, परम्परा और जातीय सांस्कृतिक पहचान के कारण अत्यंत विशिष्ट माने जाते है। ये वाद्य न केवल संगीत का माध्यम है, बल्कि लोकजीवन आस्था, इतिहास और समाज की स्मृति भी संजोए हुए है। इन लोक वाद्यों में तत् वाद्यों की अपनी एक अलग श्रेणी है। परन्तु इनमें से बहुत से तत् वाद्यों का अस्तित्व केवल घरानों, जनजातियों और वृद्ध कलाकारों तक सीमित रह गया है। जिनमें से कुछ वाद्यों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 02, July-December, 2025

1. जंतर

राजस्थान में " जंतर " शब्द लोक वाद्यों के सामान्य समूह के लिए प्रयुक्त होता था। इस वाद्य का प्रयोग बगरावत के कथावाचाकों द्वारा किया जाता था। ये कथावाचक इस वाद्य का प्रयोग ग्राम्य उत्सव, लोकदेवताओं के गीत, कठपुतली नृत्य और फड़ कथाओं में इनका प्रयोग करते थे। लगभग इसी प्रकार का एक और वाद्य मध्यप्रदेश में भी प्रचलित है उसका भी नाम जन्तर है परन्तु उसे गज से बजाया जाता है। जबकि राजस्थानी जन्तर वाद्य को आघात करके बजाया जाता है। आज इलेक्ट्रॉनिक वाद्यों और कम होती लोक परम्पराओं के कारण ये कई स्थानों से लगभग लुप्त हो गये हैं।

2. कामायचा

यह वाद्य राजस्थान की मंगा जाति द्वारा प्रयोग किया जाता है । इस वाद्य की वादन शैली सारंगी से मिलती जुलती है। परन्तु सारंगी की तुलना में इसकी ध्वनि बेहद गूंजदार, गंभीर और सूफियान प्रवृति की होती है। यह मांगणियार जाति का प्रमुख वाद्य है। कठिन अभ्यास और अप्रचलित होने के कारण इसके उस्ताद बहुत कम रह गए है। युवा पीढ़ी में भी इसका प्रचलन न के बराबर है। अतः यह वाद्य भी तेजी से लुप्त हो रहा है।

3. सारंगी

सारंगी का विवरण " संगीत नारायण " ग्रंथ में बताया गया है। यह विवरण प्रायः आधुनिक सारंगी के समान है। आधुनिक समय में सारंगी के अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं। जिनमें मुख्य है तरबवाली जिसे गुणी साजिन्दे प्रयोग करते है। परन्तु बिना तरबवाली सारंगी लोक संगीत में प्रयुक्त होती है। इस बिना तरबवाली सारंगी के कई प्रकार लोक संगीत में मिलते है जिनमें से प्रमुख हैः-

1. जोगिया सारंगी
2. गुजरातन सारंगी
3. धानी सारंगी
4. सिन्धी सारंगी
5. डेढ पसली सारंगी
6. नाद बाबा की सारंगी
7. कामरिया सारंगी
8. सामेड़ो की सारंगी

4. रावण हत्था

यह वाद्य रावणहस्त वीणा के नाम से जाना जाता था। परन्तु राजस्थान में इसे रावणहत्था के नाम से जाना जाता है। इसमें दो तन्तु लगे रहते हैं एक बटे हुए पटसन का तथा दुसरा घोड़े के बालों का। इसका यही रूप राजस्थान तथा गुजरात में प्रचलित है। किन्तु इसमें एक की तार लगा रहता है तथा इसकी कमान घोड़े की पूँछ के बालों की बनी रहती है, जिस पर घुँघरू बंधे रहते हैं। यह लगभग एक हाथ जितनी लम्बी होती है। यह राजपूत, भीलों तथा गुर्जरों का पारंपरिक लोकवाद्य जो कि शीतल, करूण और कथा प्रसंगों हेतु उपयुक्त ध्वनि देता है। यह वाद्य अब केवल कुछ जनजातियों तक सीमित रह गया है। कई पर्यटन कार्यक्रमों में इसका आंशिक पुनरूत्थान हो रहा है।

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 02, July-December, 2025

5. एकतारा

राजस्थान के लोक वाद्यों में तत् वाद्यों का अपना एक अलग स्थान है। कई प्राचीन वाद्य विभिन्न लोक जातियों व समुदायों के नाम से जाने जाते है। इसी श्रेणी में एक तार वाला वाद्य " इकतारा " अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। एकतारा का वर्तमान स्वरूप प्राचीन समय की एकतंत्री वीणा से समान होते हुए भी भिन्न है। प्राचीन एकतंत्री वीणा का वादन स्वर मन्द्र, मध्य, तार स्थानों के स्वरों पर होता था परन्तु वर्तमान एकतारा केवल एक ही स्वर उत्पन्न करता है। जिसे आधार स्वर मानकर गायक अपना गायन करता है। यह वाद्य साधु-संत, जोगी और भाट जाति के लोगों द्वारा बजाया जाता था। ये साधु-संत और जोगी जाति के लोग इस वाद्य का प्रयोग लोककथाओं और भजन गाने के लिए करते थे। परन्तु आधुनिक समय में मंचीय संगीत पर इसकी जगह आधुनिक वाद्यों ने ले ली है।

6. भपंग

मध्ययुगीन कृष्ण भक्त तथा कवियों द्वारा इस वाद्य को "उपंग" नाम की संज्ञा दी गई है। वर्तमान में इसे भपंग नाम से जाना जाता है। इससे प्रकट है कि यह वाद्य सदियों पूर्व से ही प्रचलन में है। परन्तु यह राजस्थान का एक लोक वाद्य है। जिसका वादन अलवर-भरतपुर जैसे क्षेत्रों में अत्यधिक है जिसे यहाँ पर एकतार ड्रम कहकर इस वाद्य को संबोधित किया जाता है। इस वाद्य की आवाज में " खाँ-खाँ " जैसा लचीला कंपन होता है। इस वाद्य का उपयोग भजन, आल्हा और काव्य पाठ में किया जाता है। इसकी बनावट कठिन है तथा कारीगरों की कमी के कारण यह वाद्य भी लुप्त होने के कगार पर है।

7. अपंग

व्यक्तिगत रूप से तथा जातीय गीतों के लिए प्रयुक्त होने वाला अपंग वाद्य एक तंतु वाद्य है। यह वाद्य सांगीतिक लय के लिए प्रयोग किया जाता है। यह वाद्य नागौर-बीकानेर, जैसलमेर आदि क्षेत्रों में बजाया जाता है। यह भील और गरासियों जाति का प्रमुख वाद्य है। यह वाद्य लोक गीतों के रस को एक नई ऊर्जा प्रदान करने वाला वाद्य है। परन्तु अब इसके कलाकार कम ही दिखाई पड़ते है। इसे बड़ी विड़म्बना ही कहना पडेगा कि आज की युवा पीढी और बहुत से कलाकार इस वाद्य का नाम पहली बार सुन रहे है।

8. रबाब

यह वाद्य सारंगी जाति का वाद्य है परन्तु उससे भिन्नता रखता है। यह वाद्य भाट अथवा राव जाति का मुख्य वाद्य कहलाता है। परन्तु यह वाद्य सिंधी मुस्लिम, राजस्थानी और सीमावर्ती बलोच परम्पराओं का महत्वपूर्ण वाद्य है। राजस्थान के लोक संगीत वाद्यों में " रबाब " का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यही वाद्य मेवाड़ क्षेत्र में अत्यधिक प्रचलित है। मध्य एशिया का प्रभाव लिए यह वाद्य राजस्थान की सांस्कृतिक विचारधारा तथा मिश्रधारा का प्रमाण है। चूंकि यह वाद्य गज से नहीं बजाकर नखवी या मिजराब से बजाया जाता है इसलिए वर्तमान समय में सीमित कलाकार ही है जो इसे शुद्ध पारंपरिक शैली में बजाते है।

9. गरासियों तथा मेवों का चिकारा

गरासियों का चिकारा भोपा जाति द्वारा बजाया जाता है। यह रावणहत्था से भिन्न होता है। इसका वादन मुख्य रूप से दो तारों पर होता है। जबकि मेवों के चिकारे में तीन तार लगे रहते हैं। यह वाद्य अलवर के मेवा जाति द्वारा बजाया जाता है। यह वाद्य गरासी, मेवों, भील और गुर्जर जाति जैसे समुदायों द्वारा बजाया जाता है। ये लोग कथा-वाचन, लोक-नृत्य, और अनुष्ठानों में इस वाद्य का वादन करते हैं। जनजातीय जीवन के बदलते परिवेश के साथ इसका सामाजिक उपयोग कम हो गया है।

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 02, July-December, 2025

निष्कर्ष

लुप्त हो रहे इन वाद्यों से सिर्फ संगीत का ही नुकसान नहीं अपितु समुदायों की मौखिक परम्परा, इतिहास और सांस्कृतिक आत्मा का क्षरण भी है। यदि इन्हें संरक्षित करना है तो विद्यालयों में लोकवाद्य शिक्षा, कलाकारों को आर्थिक सहयोग, रिकॉडिंग/डिजिटल प्रसारण तथा साथ ही युवा पीढी को मंच उपलब्ध कराना बहुत आवश्यक है। राजस्थान की पहचान उसके रेगिस्तान की तरह गहरी और अनुठी है और ये लोकवाद्य उसकी पहचान की ध्वनि है। इन्हे बचाना आने वाली पीढियों के लिए सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखना है।

संदर्भ ग्रंथ

1. बोराण, रमेश, राजस्थान के लोक वाद्य, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम,2008
2. मिश्र, डॉ लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
3. डॉ अनिता, राजस्थान के लोकगीत और उनमें प्रयुक्त लोकवाद्य, शलभ पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, प्रथम, 2012
4. शर्मा, डॉ सुनीता, भारतीय संगीत का इतिहास (आध्यात्मिक एवं दार्शनिक), संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम,1996
5. चक्रवर्ती, डॉ कविता, राजस्थान के लोकवाद्य, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम, 2024
6. कल्ला, डॉ वन्दना, राजस्थान के लोकतत् वाद्य, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम, 2014